

# जटिल समाजों में शिक्षा

अमन मदान

बदलते समाजों में शिक्षा में भी बदलाव आते हैं। सामाजिक ढांचों और शिक्षा का क्या संबंध है? शिक्षा सिर्फ सामाजिक ढांचों से प्रभावित होती है या स्वयं भी उन्हें प्रभावित करती है? जटिल समाजों में शिक्षा के लक्ष्यों का निर्धारण किस प्रकार हो? विविधता लिए राष्ट्र में शिक्षा के लक्ष्य तय करने में सरकार की क्या भूमिका है? यह लेख कुछ ऐसे सवालों को विचार-विमर्श के लिए खोलता है।

**भा**रत में शिक्षा आज कई तरह के सामाजिक बदलावों के चौराहे पर खड़ी है। ये सामाजिक बदलाव शैक्षिक सवालों को बुनियादी तरीके से प्रभावित करते हैं। बदलाव की जिस पहली प्रक्रिया को हम इस कड़ी में जांचेंगे, वह है सरल समाज से हटकर अधिक जटिल समाज की दिशा में बढ़ना, जिसके कारण हमारे तमाम सांस्कृतिक विश्वास, मूल्य और आचरण उलट-पुलट हुए जा रहे हैं। इसका क्या मतलब है और यह हो क्यों रहा है; यह समझने के लिए हम समाजशास्त्र की एक बुनियादी अवधारणा से प्रारंभ करते हैं। वह यह कि हम अपना जीवन किसी सामाजिक ढांचे के अंदर कुछ खास भूमिकाओं को निभाते हुए गुज़ारते हैं। भूमिकाओं को किसी दूसरे नहीं बल्कि किसी एक खास सामाजिक ढांचे में निभाना ही हमारे सबसे माहत्वपूर्ण विचारों और भावनाओं को गढ़ता है।

## भूमिकाएं और ढांचे

समाजशास्त्र के केंद्र में यह अवलोकन है कि हमारे सामाजिक जीवन में अन्य लोगों के साथ हमारे किसी तरह के रिश्ते होते हैं। ये संबंध प्रेम के हो सकते हैं जैसे मेरे और मेरी प्रेमिका के बीच, घृणा के हो सकते हैं जैसे मेरे और उन लोगों के बीच जो मुझ पर

### लेखक परिचय

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हैशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बंगलूर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

हावी होने की कोशिश करते हों, या उन लोगों के प्रति श्रद्धा के हो सकते हैं जिनके काम और विचारों का मैं सम्मान करता हूँ, आदि-इत्यादि। किसी स्कूल में जो सीखा जाता है उसका चरित्र शिक्षक और उसके छात्रों के संबंधों से बुना जाता है। समाज में इन रिश्तों में कुछ बड़ी जल्दी बदलते हैं पर साथ ही कुछ संबंधों का स्वरूप नियमित और स्थापित होता है। उदाहरण के लिए, किसी समाज में कुछ लोग ऐसे होंगे जो खाद्य पदार्थों का उत्पादन करते हैं, कुछ दूसरे उसका वितरण करते हैं और कुछ उसका उपभोग करते हैं। इनमें से हरेक का एक-दूसरे से एक खास रिश्ता होता है। जिन्हें हम भूमिकाएं कहते हैं, दरअसल ये ही तुलनात्मक रूप से टिकाऊ रिश्ते होते हैं। इस उदाहरण में किसान, सब्जी बेचने वाले और खरीददार की भूमिकाएं हैं। कभी-कभार ये तमाम भूमिकाएं एक ही व्यक्ति में शामिल हो सकती हैं तो कभी वे भिन्न-भिन्न भूमिकाएं होती हैं। जब भूमिकाएं मिली-जुली होती हैं तो शोषण या दमन का मौका नहीं होता। पर जब वे अलग-अलग होती हैं तो सिद्धान्ततः दमन की संभावना रहती है, गोकि हमेशा नहीं। उदाहरण के लिए, किसान को लग सकता है कि उसका शोषण हो रहा है क्योंकि उसे कम पैसे मिलते हैं जबकि सब्जियां बेचने वाला भारी मुनाफा कमाता है। समाज में कई अन्य प्रकार की भूमिकाएं भी होती हैं। भूमिकाओं और रिश्तों को उस समाज के ढांचे के रूप में देखा जा सकता है, और ये ढांचे भी कई प्रकार के हो सकते हैं।

भूमिकाओं के ढांचों का हमारे जीवन में भारी प्रभाव होता है।

किसी एक प्रकार के सामाजिक ढांचे में छात्रों और शिक्षकों के अनुभव किसी भिन्न प्रकार के सामाजिक ढांचे में होने वाले अनुभव से काफी फर्क हो सकता है। उदाहरण के लिए, किसी खास किस्म के ढांचे में शिक्षक परिवार के वरिष्ठ सदस्य-सा लग सकता है, जो सीखने वाले का मार्गदर्शन प्रेम और भावना के साथ करता हो। पर किसी अन्य प्रकार के ढांचे में शिक्षक एक अफसर-सा होता है जो छात्रों के शिक्षण को नियम-पुस्तिका के अनुसार कायदे और कानूनों के माध्यम से दिशा देता हो। भिन्न-भिन्न समाजों के ढांचे विपरीत हो सकते हैं, साथ ही एक ही समाज के विभिन्न स्कूलों के ढांचे भी अलग-अलग हो सकते हैं। जो छात्र किसी एक प्रकार के स्कूल से दूसरे में जाता है उसे फौरन महसूस होता है कि 'कुछ' बदल गया है। किसी एक किस्म के स्कूल का ढांचा सपाट हो सकता है और उसमें प्रशासन, शिक्षकों और छात्रों की भूमिकाएं अस्पष्ट हो सकती हैं, जिसके चलते व्यक्तिगत स्नेह और व्यक्तिगत भिन्नता के लिए काफी स्थान रहता है। पर जहां ढांचा श्रेणीबद्ध हो, जिसमें भूमिकाओं का कठोर विभाजन हो, वहां संभव है कि रिश्ते अवैयक्तिक हों और श्रेष्ठता के एक दूरस्थ आदर्श पर केंद्रित हों। समाजशास्त्रीय अवधारणाएं इन अंतरों को समझने में छात्रों, शिक्षकों और प्रशासकों की मदद करते हैं और उन्हें प्रत्येक ढांचे के फायदों और नुकसानों का आकलन करने में सहायता देते हैं।

### औद्योगीकरण तथा जटिल समाज: शिक्षा के लिए चुनौतियां

जिस सामाजिक ढांचे में शिक्षा पाई जाती है उसके साथ शिक्षा का बेहद करीबी संबंध होता है। प्रारंभिक समाजशास्त्रियों में एक थे एमील दुर्खाइम (1857-1917), जिन्होंने अपने समसामयिक काल में आने वाले बदलावों की बुनियादी रूपरेखा औद्योगीकरण और उसके कारण समाज में आ रहे बदलावों पर ध्यान देते हुए पेश की थी। उन्होंने एक छोर पर सरल सामाजिक ढांचे और दूसरे छोर पर जटिल सामाजिक ढांचे में अंतर किया था और इन दोनों छोरों के दरमियान आने वाले अनेक दूसरे ढांचों में भी। उन्होंने कहा था कि जटिल समाजों की अपनी खास किस्म की परिस्थितियां और समस्याएं होती हैं जो हमें नए सिरे से यह सोचने पर बाध्य करती हैं कि कौनसे समाधान सबसे सही होंगे। सरल सामाजिक ढांचे में तुलनात्मक रूप से कम भूमिकाएं होती हैं साथ ही उसकी स्व-सीमित इकाई भी छोटी होती है। शिकारी-एकत्रक दलों (Hunter-gatherer groups) जैसे समाजों में या कई ऐसे आदिवासी समुदायों में जो हल्की खेती करते हैं उनका समूचा सामाजिक अनुभव उनके छोटे से समूह में सीमित भूमिकाएं अदा करने का होता था। शिकारी-एकत्रक दल में अमूमन सौ से ज्यादा लोग नहीं होते थे और वे ही सारी भूमिकाएं निभाते थे- उत्पादक से लेकर उपभोक्ता की और शिक्षक से लेकर छात्र की। यह आम था कि एक ही व्यक्ति एक से अधिक प्रमुख भूमिकाएं निभाए। इसके दूसरे छोर पर औद्योगिक समाज आते हैं जिनमें भूमिकाओं का विस्फोट हुआ है। यहां भूमिकाएं इतनी परिष्कृत हो गई हैं कि उनमें से किसी एक को ही सही ढंग से निभाना सीखने में कई साल लग जाते हैं। इस कारण भूमिकाओं में सिकुड़न और विशेषज्ञता आई है। सामाजिक जीवन जिस स्तर पर जिया जाता है, वह छोटे से विशाल तक पहुंच चुका है; साथ ही कई स्तर व समूह एक-दूसरे से जुड़ गए हैं। सामाजिक अस्तित्व की प्रकृति ही संख्या और जटिलता के चलते कुछ दूसरे ही स्वरूप में बदल गई है और साथ ही शिक्षा के नियत कार्य भी बदल गए हैं।

सड़क पार करने के सरल से काम के उदाहरण पर ही विचार करें। मैं जहां काम करता हूं आजकल उसके सामने एक बड़ी सड़क है जिस पर तमाम वाहन शोरगुल से भरे प्रवाह के समान धड़धड़ाते गुजरते हैं। वहां बेहद भीड़-भाड़ रहती है क्योंकि वह सड़क एक महत्वपूर्ण आर्थिक केंद्र तक जाती है। दसियों हज़ार वाहन वहां आते-जाते हैं। अगर वह सड़क किसी गांव के रिहायशी इलाके को जाती होती, तो वहां वाहनों की आवाजाही भी कम होती। ऐसे में यातायात के नियमों की कोई दरकार न होती और इस बात से कोई फर्क भी न पड़ता कि कोई सड़क के ऐन बीचों-बीच चला जा रहा है। पर हाईवे पर ऐसा करने पर वह फौरन घायल हो सकता है या नतीजा और भी घातक हो सकता है। दुर्घटनाओं और ट्रेफिक जैम से बचाव के लिए सख्त नियम हैं कि कहां वाहन चलेंगे और कहां पैदल चला जा सकता

है। इतना ही नहीं नियम यह भी साफ करते हैं कि वाहनों को कहां रुकना होगा। कुछ खास लोग, जिन्हें ट्रैफिक पुलिस कहा जाता है, जगह-जगह खड़े रहते हैं और जो लोग नियमों का पालन नहीं करते उन्हें फटकार लगाते हैं या फिर जुर्माना भरने को कहते हैं। जब चौराहे पर खड़े होकर मैं लोगों को देखता हूँ, मैं तुरंत भांप लेता हूँ कि कौन इस जटिल नई दुनिया में नया-नया आया है और कौन इसका कुशल सदस्य है। नवागंतुक बौखलाया-सा होता है, उसे समझ ही नहीं आता कि वह कहां जाए और कहां रुके। वह हैरान-परेशान और तनाव में होता है और कहता है कि यह विशाल शहर डरावनी जगह है। पर जो व्यक्ति यहां कुछ समय से रह रहा हो वह बखूबी जानता है कि उसे कब रफ्तार घटानी है और कब बढ़ानी है। पर अपने छोटे गांव के वातावरण की आदतों के सहारे वह मौका पाते ही बढ़ने की कोशिश करता है, जिससे कई बार यातायात रुक जाता है या जैम होने की संभावना होती है। वह भी तनाव में रहता है और उसे लगता है कि वह किस तरह इस अनुभव को छोटा करे। पर जो सबसे सिद्धहस्त होते हैं, वे घबराते नहीं और उस प्रवाह से आराम से निकल जाते हैं। वे समझ चुके होते हैं कि भीड़-भाड़ में आराम से बढ़ना ही सही है। लालबत्ती पर वे रुकते हैं, इधर-उधर से निकलने की कोशिश नहीं करते। जटिल समाजों में स्थितियों से निपटने के तौर-तरीके सरल समाजों से बिलकुल फर्क होते हैं। नए संदर्भ में पुराने तरीकों को अपनाए रखना अक्सर कारगर नहीं होता। यह ज़रूरी बन जाता है कि सड़क पार करने जैसे साधारण काम पर भी नए सिरे से सोचा जाए। शिक्षा से एक अपेक्षा यह की जाती है कि वह युवा पीढ़ी को जटिल समाज के तौर-तरीके सिखाए। हम चाहते हैं कि शिक्षा उन्हें ऐसे सामाजिक ढांचे के लिए उचित संस्कृति सिखाए।

### विशिष्टतावादी से सार्विकतावादी संस्कृति की ओर

हमारी संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण व आवश्यक हिस्सा है। हम इसे सीखते हुए विरासत में पाते हैं और स्वयं इसे रचते व बदलते भी हैं। संस्कृति से हमारा तात्पर्य अमूमन उन विचारों, विश्वासों, मूल्यों, नज़रियों व आचरणों से होता है जो हम रोज़मर्रा के जीवन में सोचते, महसूसते और करते हैं। संस्कृति ही वह तानाबाना है

जुड़ाव की इस भावना को कायम रखने का एक तरीका आपसी ज़रूरतों और बाज़ार के माध्यम से वस्तुओं के लेन-देन का है। दुर्खाइम ने इस बाज़ार आधारित एकता को अनुबंधीय एकता कहा था, पर साथ ही यह भी कहा था कि ऐसी एकता मज़बूत और स्थायी जुड़ाव की ओर नहीं ले जाती। केवल बाज़ार भंगुर संबंधों की ओर ले जाता है, क्योंकि जब भी कोई बेहतर सौदा होने की संभावना हो अनुबंध तोड़े जा सकते हैं और नए अनुबंध किए जा सकते हैं। कोई भी समाज उस स्थिति में कायम नहीं रह सकता जहां रिश्ते इतने असुरक्षित और अस्थायी हों।

जिसके मार्फत हम संप्रेषण करते हैं और एक-दूसरे के अर्थ समझते हैं। इसमें रोज़ाना सामने आने वाली वे तमाम छोटी-बड़ी चीज़ें भी शामिल हैं, जैसे सड़क कैसे पार की जाए। वही हमें सुझाती है कि हम अपने समय के सबसे बड़े सवालियों को किस प्रकार समझें और उन पर कैसे प्रतिक्रिया करें। जैसे, सामाजिक दमन से कैसे निपटा जाए या अपने से बिलकुल भिन्न संस्कृति के व्यक्ति से कैसे अंतर्क्रिया की जाए। दुनिया भर की संस्कृतियों में कुछ तत्व समान होते हैं पर साथ ही उनमें भारी अंतर भी होते हैं। अक्सर यह पता करना कठिन होता है कि कहां एक संस्कृति की सीमा खत्म होती है और दूसरे की प्रारंभ हो जाती है। उदाहरण के लिए, भौगोलिक सीमा खींचना संभव है, पर एक सांस्कृतिक सीमा खींचकर यह कहना असंभव है कि कहां महाराष्ट्र खत्म होता है और कर्नाटक शुरू हो जाता है। बल्कि इस दृष्टि से यह कहना भी संभव नहीं कि कहां पाकिस्तान या श्रीलंका खत्म होते हैं और भारत शुरू होता है। तमाम साझे सांस्कृतिक विश्वास, विचार, आचरण, भाषा, मुहावरे आदि ऐसे हैं जो सरहद लांघ कर बह आते हैं।

एक अधिक गहरे स्तर पर हम सामाजिक ढांचों के सरल से जटिल बनने के साथ ही संस्कृतियों में भी क्रमिक बदलाव आते देखते हैं। जहां सरल समाज व्यक्तिगत, परिवार आधारित रिश्तों को रेखांकित करते हैं और उन्हें सबसे ज़्यादा अहमियत देते हैं, वहीं जैसे-जैसे समाज जटिल बनते जाते हैं, गैर-पारिवारिक स्थितियां अधिक महत्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसे में कई सांस्कृतिक बदलाव उभर सकते हैं। मैं कौन हूँ का भाव मेरे परिवार और उसके इतिहास के बदले, मैं जिस स्कूल में पढ़ा और मैं कारखाने या दफ्तर

या खेत में क्या करता हूँ, इससे प्रभावित हो सकता है। इस बदलाव को अक्सर विशिष्टतावाद (Particularistic) से सार्विकतावाद (Universalistic) की दिशा में बढ़ना कहा जाता है। जो संस्कृतियां विशिष्ट की ओर अभिमुख होती हैं, उनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिकाओं का वास्ता छोटे सामाजिक नेटवर्कों से, 'विशिष्ट' से, परिचित लोगों से होता है। उदाहरण के लिए, ऐसे समाज में मैं न केवल अपने भाई-बहनों के बच्चों का चाचा/ताऊ या मामा होता हूँ बल्कि अपने चचेरे, फुफेरे, ममेरे भाई-बहनों के बच्चों का भी। और चाचा/ताऊ/मामा के रूप में मेरा यह दायित्व हो सकता है कि मैं अपने सभी भांजों/भाजियों, भतीजों/भतीजियों को पढ़ाऊँ। अगर कोई दूसरा भी मुझसे पढ़ना चाहे तो मैं उसे भी पढ़ा सकता हूँ पर मेरे आसपास के महत्वपूर्ण लोगों की उम्मीद यही रहेगी कि मैं उन लोगों पर ध्यान दूँ जो मेरे रिश्तेदार हैं। परन्तु किसी सार्विकतावादी समाज में, अगर मैं शिक्षक बनकर किसी स्कूल में पढ़ाने लगता हूँ तो उम्मीद यह की जाएगी कि मैं उन सबको सिखाऊँ जो सीखना चाहते हैं। यहां इस बात पर खास बल दिया जाता है कि मैं केवल अपने संबंधियों पर ध्यान न दूँ। बल्कि मुझे चेताया जाएगा कि मैं अपनी भांजी और दूसरे छात्रों में, जिन्हें मैं नहीं जानता, कोई भेदभाव न करूँ। इस स्थिति में भाई-भतीजावाद एक बुरा शब्द बन जाता है।

**कई समाजशास्त्रियों ने यह कहा है कि स्कूलों का एक महत्वपूर्ण काम विभिन्न समूहों, प्रदेशों और समुदायों में जुड़ाव की इसी भावना को गढ़ना है। स्कूल वह स्थान है जहां अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चे विस्तृत दुनिया के बारे में सीखने आते हैं। यहीं जैविक एकता की संस्कृति रची जा सकती है। यही कारण था कि दुर्खाइम जैसे लोगों का कहना था कि स्कूलों के दिशादर्शन में सरकार की एक विशिष्ट भूमिका है।**

क्रमशः सार्विकतावादी समाजों की ओर बढ़ना जटिल ढांचों की ठेठ प्रवृत्ति होती है, क्योंकि उनमें जरूरत अधिकाधिक लोगों को परस्पर जोड़ने की होती है। यह ठीक कैसे होता है उसका प्रारूप अलग-अलग स्थानों में भिन्न रूप लेता है, फिर भी हम एक सांस्कृतिक बदलाव देख पाते हैं जो सबकी समानता को स्वीकारने की दिशा में ले जाता है और यह कहने पर बाध्य करता है कि न्याय सबके लिए होना चाहिए केवल मेरे समुदाय या संबंधियों के लिए नहीं। ये सार्विक सिद्धान्त कुछ स्थानों में अधिक विकसित हो सकते हैं तो अन्य जगहों में कम, क्योंकि वहां इन सिद्धान्तों को ऐसे लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता है जिनकी संस्कृति छोटे स्तर के समाजों की हो और जिनकी सत्ता और समृद्धि उन्हीं सामाजिक ढांचों से आती हो। सामाजिक असमानता और अन्याय नए स्वरूपों में भी उभर सकते हैं। जटिल समाजों में पृथक और छोटे समुदायों के बीच असमानता के बदले वर्ग असमानता एक प्रमुख पक्ष बनकर उभर सकता है। बेशक यह जरूरी नहीं है कि समाज हमेशा ही इसी दिशा में बढ़े। आप इतिहास में पाएंगे कि सिंधु घाटी सभ्यता जैसे जटिल समाज भी ध्वस्त होकर पुनः अधिक सरल छोटे स्तर के ग्राम समाज में तब्दील हुआ। या यह भी संभव है कि जातिवाद और नस्लवाद पहले की तुलना में कम दृश्य रूपों में बरकरार रहे।

एमील दुर्खाइम ने अपनी रचना 'द डिविज़न ऑफ लेबर इन सोसाइटी' (1893) में संकेत किया था कि जटिल समाजों की संस्कृतियों की दिशा में बढ़ना आसान नहीं होता। हालांकि रिश्तेदारी आधारित संबंध कम महत्वपूर्ण बनते हैं (वे पूरी तरह गायब नहीं होते) नए समूह स्वरूप उभरते हैं। इन समाजों में भी प्रभुत्व स्थापना के कई स्वरूप हो सकते हैं जो कुण्ठा और क्रोध को भड़काते हों। कोई एक समूह अन्य समूहों का दमन कर सकता है या उसके सदस्यों को लग सकता है कि केवल वे ही अच्छे लोग हैं और बाकी सब घटिया और असभ्य हैं या किसी न किसी तरह ठुकराए या नकारे जाने योग्य। जटिल समाजों को बने रहने के लिए कई चीजों की जरूरत होती है, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण है जुड़ाव या बंधुत्व की भावना जो उसे बांधे रखे। यह बंधुत्व सरल और छोटे स्तर के समाजों में भी जरूरी होता है, जहां यह दैनिक आदान-प्रदान और उत्सवों के द्वारा रचा जाता है। दुर्खाइम ने सरल प्रकार के बंधुत्व को 'मैकेनिकल' या मशीनी बंधुत्व कहकर परिभाषित किया था। ऐसी बंधुत्व भावनात्मक व भाईचारे की भावनाओं पर आधारित होता है जो प्रत्यक्ष रूबरू अंतर्क्रिया से उपजती है।

परन्तु जटिल समाजों में एकता को गढ़ना कहीं अधिक पेचीदा होता है। उनमें अमूमन अलग-अलग तरह के लोगों का हर दिन आपसी आदान-प्रदान नहीं होता। समसामयिक जटिल समाजों में पृथक विशिष्ट समूह होते हैं, जैसे कारखानों के कार्मिक, चिकित्सक, शिक्षक आदि-आदि। उनका संपर्क अन्य समूहों के लोगों के बजाए अपने ही समूह के लोगों से अधिक होता है। भारत जैसे देश में जहां अनेक भिन्न भाषाएं, धर्म व समुदाय हैं एकता को गढ़ने में तमाम कठिनाइयां पेश आती हैं। तमिलों को लग सकता है कि वे गुजरातियों या कन्नड़ों से भिन्न हैं। मिज़ोरम से आने वाले लोग जब दिल्ली पहुंचते हैं तो उनका गर्मजोशी से स्वागत नहीं किया जाता। ऐसे समाजों की समस्या हमेशा यह रहती है कि उसके विभिन्न और विविध भागों के बीच जुड़ाव की भावना कैसे रची जाए।

जुड़ाव की इस भावना को कायम रखने का एक तरीका आपसी ज़रूरतों और बाज़ार के माध्यम से वस्तुओं के लेन-देन का है। दुर्खाइम ने इस बाज़ार आधारित एकता को अनुबंधीय एकता कहा था, पर साथ ही यह भी कहा था कि ऐसी एकता मज़बूत और स्थायी जुड़ाव की ओर नहीं ले जाती। केवल बाज़ार भंगुर संबंधों की ओर ले जाता है, क्योंकि जब भी कोई बेहतर सौदा होने की संभावना हो अनुबंध तोड़े जा सकते हैं और नए अनुबंध किए जा सकते हैं। कोई भी समाज उस स्थिति में कायम नहीं रह सकता जहां रिश्ते इतने असुरक्षित और अस्थायी हों। उन्होंने कहा था कि अगर जटिल समाजों को बने रहना है तो उन्हें 'जैविक एकता' की आवश्यकता होगी, जो ऐसी संस्कृति पर आधारित हो जो सभी विभिन्न सामाजिक समूहों व विभाजनों तक पहुंच सके। 'जैविक' शब्द का उपयोग कर दुर्खाइम एक उपमा प्रस्तुत कर रहे थे। वे ध्यान दिला रहे थे कि जिस प्रकार समाजों में अनेक परस्पर संबंधित समूह व समुदाय होते हैं ठीक उसी प्रकार वनस्पतियों और पशुओं के भी अनेक अंग होते हैं जो परस्पर जुड़े होते हैं। किसी पौधे को बचे रहने और फलने-फूलने के लिए यह ज़रूरी होता है कि उसके सभी अंग मिलजुल कर कुशलता से काम करें। हालांकि पौधे की उपमा को बहुत अधिक नहीं खींचना चाहिए, किसी भी समाज के विभिन्न समूहों को अपनी-अपनी जगह मिलनी चाहिए और सबको यह महसूस होना चाहिए कि उन्हें न्याय मिल रहा है। साथ ही उन्हें पारस्परिक जुड़ाव के आनंद और फायदों का अहसास भी होना चाहिए। दुर्खाइम के लिए जैविक एकता का अर्थ एक ऐसी संस्कृति था जो लोगों को एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से जुड़ने में मददगार हो। ऐसा तभी संभव हो सकता है जब लोगों को यह न लगे कि उनका फायदा उठाया जा रहा है या उन्हें किसी कोने में धकेला जा रहा है।

**सरकार वह संस्था है जिसे सभी समूहों की भागीदारी प्राप्त है और जो सबको जोड़ने वाला सार्विक निकाय है। अतः सरकार को ही यह सुनिश्चित करना होगा कि एक उपयुक्त जैविक संस्कृति रची जाए। क्या पढ़ाया जाए यह तय करने की प्रमुख ज़िम्मेदारी सरकार इस या उस समूह को नहीं सौंप सकती। बेशक इसका मतलब यह भी था कि वह सरकार स्वयं भी लोकतांत्रिक व न्यायपूर्ण हो, जो विभिन्न नज़रियों को स्थान दे और उनके बीच समायोजन तलाशे।**

कई समाजशास्त्रियों ने यह कहा है कि स्कूलों का एक महत्वपूर्ण काम विभिन्न समूहों, प्रदेशों और समुदायों में जुड़ाव की इसी भावना को गढ़ना है। स्कूल वह स्थान है जहां अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चे विस्तृत दुनिया के बारे में सीखने आते हैं। यहीं जैविक एकता की संस्कृति रची जा सकती है। यही कारण था कि दुर्खाइम जैसे लोगों का कहना था कि स्कूलों के दिशादर्शन में सरकार की एक विशिष्ट भूमिका है। अगर स्कूल किसी एक समुदाय या किसी एक सामाजिक वर्ग द्वारा चलाए जाते हैं तो उनका रुझान उसी समूह के नज़रिए को सामने रखने का होगा। कोई संस्कृति जिस पर कोई एक प्रांत या धर्म या समूह हावी हो वह जैविक एकता उपलब्ध नहीं करवा सकती। वह लोगों को जोड़े नहीं रख पाएगी क्योंकि लोग ऐसे किसी भी आरोपण को नापसंद करेंगे। पर सरकार वह संस्था है जिसे सभी समूहों की भागीदारी प्राप्त है और जो सबको जोड़ने वाला सार्विक निकाय है। अतः सरकार को ही यह सुनिश्चित करना होगा कि एक उपयुक्त जैविक संस्कृति रची जाए। क्या पढ़ाया जाए यह तय करने की प्रमुख ज़िम्मेदारी सरकार इस या उस समूह को नहीं सौंप सकती। बेशक इसका मतलब यह भी था कि वह सरकार स्वयं भी लोकतांत्रिक व न्यायपूर्ण हो, जो विभिन्न नज़रियों को स्थान दे और उनके बीच समायोजन तलाशे।



## व्यक्तिवाद, सामाजिक अंतर और शिक्षा

दुर्खाइम और कई दूसरे समाजशास्त्रियों का मानना था कि बेहद जटिल समाजों में यह अपरिहार्य है कि लोग अधिक व्यक्तिवादी बनें। छोटे स्तर के समाजों में साझी पहचान को तथा एक परिवार और एक समुदाय से होने की भावना को अहमियत दी जाती है। पर जैसे-जैसे समाज बड़े स्तर के बनते जाते हैं, लोगों को ऐसी विविध परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो उनके माता-पिता के सामने आई ही न हों। ऐसे में कुछ सामुदायिक बंधनों से पीछे हटना उनके लिए फायदेमंद रहता है। उदाहरण के लिए, कुछ छात्रों को यात्रा कर परिवार से दूर छात्रावासों में रहना पड़ता है। यह ज़रूरी है कि उन्हें यह लगे कि वे स्वयं स्थिति को संभाल सकेंगे और भावनात्मक सहारे व मार्गदर्शन के लिए उन्हें बार-बार घर नहीं भागना होगा। अगर कोई छात्र ऐसा करता रहे और अपनी कक्षाएं छोड़ प्रत्येक त्यौहार, जो पारिवारिक घनिष्ठता का उत्सव हो, उसे मनाने घर जाता रहे तो वह कम सीख पाएगा। हालांकि परिवार के साथ भावनात्मक जुड़ाव काबिले तारीफ है, जटिल समाजों में यह बेहतर है कि लोग स्वयं के साथ जीना और काम करना सीख लें। इसी तरह यह भी ज़रूरी है कि वे खुद अपने लिए सोचना भी सीखें। जटिल समाजों की भूमिकाएं यह मांग करती हैं कि लोग अपने काम का स्वतंत्र आकलन करें और तेज़ी से सोच-समझ कर निर्णय लें। इसका मतलब है कि छात्रों से यह अपेक्षा रहती है कि वे आत्मनिर्भर हों और ऐसे निर्णय लेने से भी न घबराएं जो बहुमत से भिन्न हों। जटिल समाजों में व्यक्तिवाद एक ऐसा गुण सिद्ध हो सकता है जो लोगों को अधिक लचीला और उनके कर्म में उद्यमशील बनाए।

विगत शताब्दियों में हमने अनेक ऐसे देशों को उभरते देखा है जिनका आकार विशाल हो, जिसमें सैकड़ों-करोड़ों की आबादी हो। इन सभी देशों ने लोगों में साझेदारी व जैविक एकता की भावना उत्पन्न करने की चुनौती का सामना किया है। कुछ देशों ने किसी एक समुदाय या प्रदेश की संस्कृति को शेष लोगों पर लाद कर ऐसा किया है, तो अन्य देशों ने एक अधिक विस्तारित अभिगम अपना कर। एक सामंजस्यपूर्ण समाज के निर्माण की रणनीति में शिक्षा केंद्रीय बिन्दु रही है। वे सब इस समस्या का भी सामना कर रहे हैं कि जैविक एकता केवल तब काम करती है जब उनके समाज में आंतरिक न्याय मौजूद हो।

समाजशास्त्रियों का एक दल, जो प्रकार्यवादी (फंक्शनलिस्ट) कहलाते हैं, की रुचि इस बात में रही है कि समाज किस प्रकार सामंजस्यपूर्ण बनते हैं और अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं। दूसरे शब्दों में, समाज के विभिन्न हिस्से और पक्ष किस प्रकार अपना 'कार्य' करते हैं कि समाज पनपता रहे। एमील दुर्खाइम, टैलकॉट पार्सन्स तथा एम.एन. श्रीनिवास ऐसे समाजशास्त्रियों के उदाहरण हैं। ऐसे समाजशास्त्र की रुचि यह जानने में है कि शिक्षा और संस्कृति जटिल समाजों को एक साथ बने रहने और अपनी समस्याओं से निपटने में कैसे मददगार होती है। हालांकि यह भी सच है कि समाजों में कई आंतरिक तनाव व संघर्ष भी होते हैं। इस कड़ी के अगले आलेख में हम समाज में संघर्षों पर नज़र डालेंगे, खासतौर से उन संघर्षों पर जो हमारी बदलती अर्थव्यवस्था से निकले हैं और उन शैक्षिक प्रश्नों पर जो ये संघर्ष उठाते हैं। ♦

### आगे पढ़िए

Madan, Amman. "Emile Durkheim on Moral Education." \_Contemporary Education Dialogue\_ 7, no. 2 (2010): 225-48.

Ramanujan, A.K. "Is There an Indian Way of Thinking? An Informal Essay." \_Contributions to Indian Sociology\_ , N.s. 23, no. 41 (1989): 41-58.

Saberwal, Satish. \_Roots of Crisis: Interpreting Contemporary Indian Society\_. New Delhi; Thousand Oaks: Sage Publications, 1996.